International Journal of Sanskrit Research
अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2023; 9(6): 218-223
© 2023 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 15-10-2023
Accepted: 18-11-2023

धनञ्जय कुमार
पीएच. डी. (शोधार्थी), संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
धनञ्जय कुमार
पीएच. डी. (शोधार्थी), संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

कालिदास कृत महाकाव्यों में पुरुषार्थ चतुष्टय

धनञ्जय कुमार

प्रस्तावना

विकासशील मानव अनादिकाल से ही अपनी बाह्याभ्यन्तर प्रगति के लिए सतत संघर्षरत रहा है । ज्ञान, तप, यज्ञ, योग, चिन्तन, मनन, संस्कार एवं विभिन्न धार्मिक कृत्यों के विविध सोपानों से वह जीवन के लक्ष्य की उपलब्धि के लिए अग्रसर होता रहा है। आज से सहस्रों वर्ष पूर्व भारतीय ऋषियों ने व्यष्टि और समष्टिगत जीवन को सुव्यवस्थित और समुन्नत बनाने के लिए समय-समय पर जो मौलिक परिवर्तन किये हैं उनका निष्कर्ष ही धर्म के रूप में मान्यता प्राप्त कर विकसित होता रहा है। वेद, पुराणों से उद्भूत धर्म की सरिता आदि काल से अनेकों धाराओं में निःसृत होकर अपने धर्मामृत से जनजीवन को आप्यायित करती रही है। मानव जीवन का प्रमुख लक्ष्य है सुख की प्राप्ति। वह विभिन्न उपायों द्वारा सुख के साधनों का एकत्रीकरण चाहता है। उसकी यही प्रवृत्ति उसे दुःख की ओर ले जाती है। क्योंकि जो भी वस्तु आसक्ति परायण होकर भोगी जाती है वह कष्टदायी होती है। इस विधान में पुरुषार्थ चतुष्ट्य का त्रिवर्ग धर्म, अर्थ, काम संग्रहीत हो जाता है जब यह त्रिवर्ग शुद्ध मन से उपसेवित होता है तब निःश्रेयस की प्राप्ति में सहायक होता है। इसमें प्रथम त्रिवर्ग साधन है और मोक्ष साध्य है इनका यथोचित सम्पादन करना ही मानव जाति का लक्ष्य है।

संस्कृत वाङ्मय में वर्णित पुरुषार्थ चतुष्ट्य वेद निहित बीजों के पल्लवित रूप हैं। भारतीय संस्कृति के मेरुदण्ड स्वरूप पुरुषार्थ चतुष्ट्य की यह अमृतनद महाकवि कालिदास के साहित्य में भी प्रवाहित हुई है और अपने पावन अमृत से जन जन के लिए मन्दाकिनी बन गयी है। इस ज्ञान गंगा से स्नात हुआ प्राणी तृप्त होकर पुलकित हो जाता है। कालिदास के साहित्य में पुरुषार्थ सम्बन्धी मानदण्ड विद्यमान हैं।

कालिदास के महाकाव्यों में पुरूषार्थ चतुष्टय

रघुवंश महाकाव्य में धर्म पुरुषार्थ

रघुवंश महाकाव्य के द्वितीय सर्ग का प्रारम्भ भी धर्मपुरुषार्थ से हुआ है फूल, माला तथा चन्दन से नन्दिनी गाय की पूजा की गयी थी। आज भी किसी भी पूजा विधान में फूल, माला, चन्दनादि प्रयुक्त होता है। फूल, सुगन्ध का, माला समत्व का, तथा चन्दन दीर्घ जीवन का प्रतीक माना जाता है। रक्षा धर्म के सम्बन्ध में रघुवंशम् के द्वितीय सर्ग में उल्लेख

मिलता है यदि तुम मेरे भोजन (सिंह) बन जाते हो तो केवल एक (गाय) की ही रक्षा होगी। परन्तु जीते रहने पर पितृ सदृश सकल प्रजा आपके द्वारा रक्षित होगी[1] किन्तु महाराज दिलीप के अन्दर तो त्याग भाव था, उन्हें अपने शरीर को समर्पित कर देना था इसीलिए तो राजा दिलीप ने कहा कि मुझे अपना शरीर खोकर भी इसे छुड़ाना चाहिए। क्योंकि ऐसा करने से तुम्हारी भूख भी मिट जायेगी और गाय के न रहने से शिष्ट की जो या क्रियाएँ रुक जातीं वे भी न रुकेंगी।[2] यही राजा दिलीप का भक्ति भाव धर्म एवं श्रद्धा व त्याग धर्म का मञ्जुल समन्वयात्मक रुप था। दूसरी ओर क्षत्रिय धर्म के अनुसार दूसरे को नष्ट होने से बचाना राजा का परम कर्त्तव्य बनता है।[3]

रघुवंश के तृतीय सर्ग में संस्कार धर्म का कितना मनोरम भाव वर्णित है - पुत्र रत्न प्राप्ति सम्बन्धित शुभ समाचार पाकर तपोवन से आकर पुरोहित वशिष्ठ जी ने स्वभावतः सुन्दर उस बालक के जातकर्म आदि संस्कार किये।[4]

रघुवंश के सप्तम सर्ग में आश्रम धर्म का वर्णन मिलता है सूर्यवंशी राजाओं का यह नियम था कि जब पुत्र कुल भार संभालने लायक हो जाता था तब वे घर का त्याग कर जंगल की ओर प्रस्थान करते थे।[5] राजा अतिथि के विषय में धर्म से काम लिये जाने का वर्णन है। कूटनीति या छल प्रयोग से नहीं। इसी प्रकार क्षेमधन्वा, जो कि पुण्डरीक का पुत्र था का पिता अपना राज्य भार छोड़कर शान्त मनसा जङ्गल में तप करने चला गया।[6] क्षेमधन्वा से देवानीक का जन्म हुआ। उस पितृभक्त पुत्र को पाकर जैसे क्षेमधन्वा पुत्रवान् हुए थे, वैसे ही पुत्रप्रिय पिता को प्राप्तकर देवानीक भी पितृमान हुए।[7] बड़े बड़े यज्ञकर्त्ता और गुणवान अपने ही जैसे तेजस्वी पुत्र को चारों वर्णों की रक्षा का भार सौंपकर स्वर्ग की ओर प्रस्थान किए जाने का वर्णन अट्ठारहवें सर्ग में किया गया है।[8] यहाँ पितृ धर्म व रक्षा धर्म का अद्भुत समन्वय का प्रदर्शन किया गया है।

रघुवंश महाकाव्य में अर्थ पुरुषार्थ- रघुवंशी राजा जन त्याग करने के लिए धन एकत्रित करते थे।[9] इस प्रकार उनका धन त्याग पूर्वक उपभोग के लिए था, निजी भोग विलास हेतु नहीं था। उपनिषद् इसी बात को 'व्यक्तेन भुञ्जीथाः' कहकर अर्थ में त्याग की ओर संकेत देते हैं। हारे हुए कम्बोज के राजाओं ने रघु को बहुत से घोड़े व धन प्रदान किये[10] परन्तु उतना धन पाकर भी उन्हें रंच मात्र अभिमान नहीं हुआ। वे धन रुपी मद से परे थे। दिग्विजय से लौटकर रघु ने विश्वजित नाम का यज्ञ किया, जिसमें उन्होंने अपनी सारी सम्पदा दक्षिणा में दे डाली।[11] जैसे बादल समुद्र से जल लेकर फिर पृथ्वी पर बरसा देते हैं, वैसे ही महात्मा लोग भी धन को दान करने के लिए जुटाते हैं। यहाँ दान अर्थ का सम्यक् परिपालन हुआ है। इस तरह रघु की सम्पदा परोपकार व दया हेतु थी, निजी स्वार्थ के लिए नहीं। राजा द्वारा किया गया अश्वमेघ यज्ञ ब्राह्मण दक्षिणा की अधिकता के फलस्वरूप विश्वविख्यात हो गया। अतएव राजा अतिथि को लोग दूसरा कुबेर मानने लगे। अर्थात् राजा अतिथि में दानशीलता स्पष्टरूपेण परिलक्षित होती है।[12] यदि कुबेर के पास धन का भण्डार है, वह धन का मालिक है। तो राजा अतिथि में भी वैभव समाहित है।

रघुवंश महाकाव्य में 'काम' पुरुषार्थ- रघुवंशी राजा जन अनासक्त भाव से सांसारिक सुखों को भोगते थे। महाराज दिलीप पुत्र प्राप्ति कामनया महर्षि वशिष्ठ जी के आश्रम में पहुँचे। मन की अभिलाषा को जानकर कामधेनु की पुत्री नन्दिनी की सेवा द्वारा मनोकामना पूर्ति का उपाय वशिष्ठ जी ने राजा दिलीप को बतलाया।

आकर्षणजन्य काम का उल्लेख रघुवंश के षष्ठ सर्ग में किया गया है, जिसमें इन्दुमती का वर्णन हुआ है। उसकी सुन्दरता को देखते ही समस्त राजाओं का मन उस पर एकाग्र हो गया, केवल उनके शरीरभर मंचों पर रह गये। राजाओं ने प्रेम प्रदर्शित करने हेतु वृक्षों के पत्तों का आश्रय लेकर विविधतया भौंहादि चलाकर शृंगारमयी चेष्टायें की, वे ही मानों उनके प्रेम को इन्दुमती तक पहुँचाने वाली अग्र दूतियाँ थी।[13]

रघुवंश के षष्ठ सर्ग में काम भावना प्रकट की गयी है वह इन्दुमती, लाज के मारे अपने प्रेम की बात अज को तो नहीं जता सकी, परन्तु उस प्रेम के कारण उसे रोमांच हो आया, जिससे घुँघराले बालों वाली इन्दुमती के हृदय का वह प्रेम छिपाये नहीं छिप सका, मानों उन खड़े रोंगटों के बीच में वह प्रेम ही शरीर फोड़कर बाहर निकल आया हो।[14]

अज इन्दुमती स्वयंवर के दर्शन के समय काम भावना का मनोहारी पुटपाक इस प्रकार प्रस्फुटित होता है-'एक स्त्री अपने घर के झरोखे में आँखे गड़ाये खड़ी थी, सहसा उसकी नीवी खुल गयी, परन्तु उसको बाँधने की उसे सुधि ही नहीं थी।[15] वह कपड़े हाथ से पकड़े हुए इस प्रकार खड़ी थी, कि उसके हाथ के आभूषणों की चमक उसकी नाभि तक जा

पहुँचती थी। एकाग्रचित व एकटक्कदृष्टि से अभिभूत नारियों की इच्छा उक्त कथनों में समाहित हो जाती है।

इस प्रकार रघुवंश के उन्नीसवें सर्ग में विशेषतयः काम पुरुषार्थ, राजा अग्निवर्ण के हाव भाव, रति भाव, ऋतु के अनुकूल जीवन यापन, व सुन्दरियों के के साथ की गयी क्रीडा के द्वारा प्रस्फुटित होकर वह चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया है।

रघुवंश महाकाव्य में मोक्ष पुरुषार्थ:- रघुवंश के प्रथम सर्ग से ही योग का वर्णन प्रारम्भ हो जाता है । 'योगः कर्मसु कौशलम्' गीता का यह उद्धरण कितना प्रासंगिक है। योग द्वारा शरीर त्याग अत्युत्तम माना जाता है। योग क्रिया दीर्घ जीविता की ओर संकेत है। रघुवंशी राजा के लोग अन्त में योग द्वारा शरीर छोड़ते थे।[16] मोक्ष पुरुषार्थ की ओर संकेतित है। द्वितीय सर्ग में पंचतत्त्व रचित शरीर को नश्वर मानकर मोहावरण को हटाने की बात कही गयी है।[17]

मोक्ष श्रेय का वरण करता है तथा मायोपहित वस्तुओं को दूर करता है। अष्टम सर्ग के तेरहवें श्लोक में यह उल्लिखित है कि रघु अपने पुत्र अज को बहुत चाहते थे, इसलिए अज की आँखों में आँसू देखकर वे रुक तो गये, परन्तु जैसे साँप अपनी केचुली छोड़कर फिर उसे धारण नहीं करता, वैसे ही उन्होंने जिस राज्यलक्ष्मी को एक बार छोड़ दिया था, उसे फिर नहीं अपनाया।[18] अर्थात् सांसारिक भोग विलास से रहित हो गये।

प्राणायाम आदि के द्वारा मन को वश में करके मुक्ति पाने के लिए योगी लोग[19] अपने हृदय में बैठे हुए ज्योतिस्वरुप ईश्वर की ही सदा खोज करते रहते हैं। अजन्मा कहलाते हुए भी जन्म लेने वाले, अकर्मा होते हुए भी शत्रुसंहारक, योगनिद्रा में सोते हुए भी जागरणशील ईश्वर के स्वरुप को कौन जान सकता है। इस तरह मोक्ष पुरुषार्थ में व्यक्ति समस्त भोगों से रहित माया बन्धन का त्याग कर देता है। जैसे गंगा जी की सभी धाराएँ समुद्र में जा गिरती हैं, उसी प्रकार सिद्धि (परमानन्द) प्राप्त करने के जितने मार्ग बतलाये गये हैं, अलग-अलग शास्त्रों में अलग-अलग रुप से बतलाये जाने पर भी वे सब मार्ग आपके ही पास जाते हैं। जो लोग सदा आपका ही ध्यान धरते हैं, जिन्होंने अपने सब कर्म आपको ही अर्पित कर दिया हैं, और जो रागद्वेष से से दूर हैं, उनको आप ही जन्म मरण के बन्धन से मुक्ति दिलाते हैं।[20] योग मर्ग से मुक्ति प्राप्त होती है[21] जैसे लक्ष्मण ने सरयू तट पर योग बल से शरीर का त्याग किया था। भगवान राम भी विराट शरीर में विलीन हो गये अट्ठारहवें सर्ग में राजापुष्य ने भी योग विद्या निदिध्यासन के उपरान्त अपने शरीर को में के आवागमन के भवसागर से मुक्त कर दिया। इस प्रकार रघुवंशी राजा लोग योग विद्या द्वारा मुक्ति का मार्ग प्रशस्त कर लिये थे।

कुमारसम्भव महाकाव्य में धर्म पुरुषार्थ: श्री शब्द से प्रारम्भ कुमारसम्भव के प्रथम सर्ग में भारत उत्तरी भाग में देवता सदृश पूज्यनीय हिमालय नामक विशाल पर्वत[22] की धार्मिकता स्पष्टतयः परिलक्षित होती है, जिसमें देवतात्मा हिमालय का उल्लेख किया गया है। संस्कार धर्म के अन्तर्गत विवाह संस्कार वर्णित है यथा समेरु के मित्र व मर्यादा के ज्ञाता हिमालय[23] ने अपनी वंशवृद्धि के लिए पितरों के मन में उत्पन्न मेना नाम की कन्या से शास्त्र के अनुसार विवाह किया। विवाहोपरान्त हिमालय और मेना के सहयोग से मैनाक का जन्म हुआ।

पंचम सर्ग में तप धर्म का वर्णन किया गया है-पार्वती अपने पिता हिमालय से पति प्राप्त करने हेतु तपस्या की अनुमति ग्रहण करती हैं।[24] यथा- पार्वती जी ने अपने कोमल हाथों से तपस्या हेतु रुद्राक्ष की माला थाम ली[25] और कुश अंकुर उखाड़-उखाड़कर अपने हाथों की उंगलियों में घाव कर लिये ।

धार्मिक कृत्यों में वानप्रस्थ आश्रम धर्म की चर्चा कुमारसम्भव, पंचम सर्ग में की गयी है-उस नवीन पर्णकुटी में सदा हवन की अग्नि जलती रहती थी, इस कारण से वह तपोवन पवित्र हो गया था।[26] उस तपोवन के पवित्र आश्रम में पार्वती जी ने कठोर तपस्या प्रारम्भ कर दी, जिसके अन्तर्गत वह अंगारों के बीच में बैठा करती थी। पूस माघ की जिन रातों में वहाँ शीतपवन चारों ओर हिम ही विखेरता हुआ चलता था, उन दिनों वे रात-रात भर जल में बैठकर बिता देती थी। अपने आप टूटकर गिरे हुए पत्तों को खाकर रहना ही तप की पराकाष्ठा समझी जाती है, परन्तु आगे चलकर पार्वती ने उन पत्तों को भी खाना छोड़ दिया। इसीलिए उन मधुरभाषिणी पार्वती जी को पण्डित लोग पत्ते न खाने वाली 'अपर्णा' कहने लगे।[27]

धर्म करने से पुण्य का संचय होता है, किन्तु पाप करने से पुण्य क्षय यथा-शिव-इन्द्र वार्तालाप में पाप करने से बहुत दिनों का संचित पुण्य हाथ से निकल जाता है, वैसे ही बड़ी-बड़ी सिद्धियों से परिपूर्ण सुन्दर स्वर्ग आप लोगों के हाथ से कैसे निकल गया।"[28]

आज्ञापालन धर्म का विवेचन द्वादश सर्ग में इस प्रकार चर्चित है 'भगवान शङ्कर की आज्ञा को कुमार कार्तिकेय ने सिर झुकाकर माना। क्योंकि पितृ भक्त पुत्रों का यही धर्म है कि वे पिता की आज्ञा मानें।[29] शिष्टाचार धर्म का वर्णन कुमारसम्भव में किया गया है-सब देवता जिसकी स्तुति करते हैं, उस मान्दाकिनी के तट पर जाकर कुमार कार्तिकेय ने सिर झुकाकर तथा अपने किरीट के सिरे पर हाथ जोड़कर बड़ी भक्ति व प्रसन्न मन से वन्दना की। स्वर्ग में जब इन्द्र पथ प्रदर्शक के रुप में कुमार कार्तिकेय का ले जा रहे थे, तब कुमार ने देव-दानव वंश के सबसे वयोवृद्ध महर्षि कश्यप के चरणों की प्रदक्षिणा करके उन्हें प्रणाम किया। कश्यप की स्त्री व देवों की माता अदिति के उन चरणों को भी प्रणाम किया, जिसे सारा संसार पूजता है।[30] इसके अनन्तर इन्द्र की पत्नी शची को प्रणाम किया एवं विजय का आर्शीवाद प्राप्त किया। अग्रिम सर्गों में कुमार के क्षत्रियत्त्व धर्म के लोककल्याण हेतु परिपालन का वर्णन है।

कुमारसम्भव महाकाव्य में अर्थ पुरुषार्थ: कुमारसम्भव के प्रथम सर्ग में अर्थ तत्त्व का वर्णन है, जिसके अन्तर्गत यह कहा गया है, कि सब पर्वतों में हिमालय को बछड़ा बनाया और दुहने में चतुर सुमेरु पर्वत को दोग्धा (दुहने वाला) बनाकर पृथ्वी रुपिणी गाय से सब चमकीले रत्न और जड़ी-बूटियाँ दुहकर निकाली।[31]

वर्तमान परिपेक्ष्य में हम देखते हैं, कि हिमालय पर्वत औषधियों व वनस्पतियों का आगार है। तथा खदानों से अनेक प्रकार के महँगे पत्थर निकलते हैं ज्योतिष विद्या में इन पत्थरों जैसे पुखराज, मोती, माणिक्य नीलम गोमेद का बहुत महत्त्व है। लाख रुपये तक के पत्थर बाजारों में बिकते हैं। जबकि जड़ी बूटियाँ विषनिवारक एवं आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति में अत्यन्त उपयोगी है।

कुमारसम्भव के षष्ठ सर्ग में हिमालय के ओषधिप्रस्थ नगर का वर्णन है। कि वह नगर ऐसा सम्पन्न था कि उसने धन-सम्पत्ति से भरी अलकापुरी को भी नीचा दिखा दिया था।[32] ऐसा लगता था कि मानों स्वर्ग का बढ़ा हुआ सब धन लाकर उसमें भर दिया गया था।

कुमारसम्भव महाकाव्य में काम पुरुषार्थ: ग्यारहवें सर्ग में जहाँ कुमार के जन्म का वर्णन (लोक कल्याण हेतु) हुआ है, वही बारहवें सर्ग में काम पुरुषार्थ विवेचित है, यथा-"अपनी सहस्त्रों आँखों से शंकर जी को देखकर इन्द्र ने अपने को बढ़ा भाग्यवान माना परन्तु इससे उनके शरीर भर में जो रोमाञ्च हो आया, उसे देखकर उन्हें यह डर भी हो गया, कि कहीं इन्द्राणी यह न समझ लें कि किसी दूसरी सुन्दरी को देखने से इन्हें रोमाञ्च हो आया, इस पर वे सौतियाडाह करके रुठ न जाएँ।[33] सामान्य व विशिष्ठ काम की चरम परिणति हुई है। इस प्रकार कुमार संभव में काम क्रीडा का उदात्त वर्णन प्राप्त होता है।

कुमारसम्भव महाकाव्य में मोक्ष पुरुषार्थ: कुमारसम्भव के द्वितीय सर्ग में मोक्ष तत्व परिलक्षित होता है- 'इन्द्रगज(ऐरावत) को भी हरा देने वाले उसके हाथी पुष्करावर्त्तक आदि प्रलयंकारी बादलों से टकराकर टीले ढहाने का खेल खेलते हैं[34] हे प्रभो! जैसे मोक्ष पाने के इच्छुक लोक जन्म-मरण से छूटने के लिए कर्मबन्धनों को काटने वाला उपाय खोजा करते है,[35]

कुमारसम्भव के तृतीय सर्ग में कालिदास जी ने मोक्ष शब्द उल्लेख किया है, जिसमें कहा गया है कि वह आपका शत्रु कौन पुरुष है, जो संसार के कष्टों से घबराकर मोक्ष की ओर चल पड़ा है।[36] मोक्षाधार निरुपण महिमा का कितना मनोहारी वर्णन किया गया है समाधिस्थ शंकर जी उस अविनाशी आत्मा की ज्योति को अपने भीतर देख रहे थे, जिसे ज्ञानी लोग अपनी नौ इन्द्रियों के द्वार रोक तथा मन को समाधि द्वारा वश में करके उसे अपने हृदय में रखकर जान पाते हैं।[37]

उपसंहार

महाकवि कालिदास के ग्रन्थों के अन्तर्गत महाकाव्यों में वर्णित पुरुषार्थ चतुष्टय में सर्वाधिक धर्म तदन्तर काम का प्रयोग किया गया है। अर्थ और मोक्ष गौणरुपेण वर्णित है। रघुवंशावलियों के उदात्त चरित्रों का वर्णन धर्ममय रुपेण हुआ है। किन्तु राजा अग्निवर्ण द्वारा कामान्ध हो जाने से इस वंश का पतन बताया गया है। कुमारसम्भव में माता पार्वती की तप की पराकाष्ठा से धर्मयुक्त वर्णन मिलता है। भगवान शिव के स्वरूप वर्णन में मोक्ष की अनुभूति प्राप्त होती है, जबकि लोककल्याण हेतु समबन्ध युक्त पार्वती व महादेव की काम भावना भी अनूठी है।

इस प्रकार महाकवि कालिदास के काव्यों में सर्वत्र एक अत्यन्त उदात्त नैतिकता तथा आदर्श भारतीय मर्यादा का चित्रण हुआ है।

सन्दर्भ

1. प्रजाः प्रजानाथ पितेव पासि रघुवंश २.४८
2. न पाराणा स्याद्विहता तवैवं भवेदलुप्त मुनेः क्रियार्थ- रघु. २.५५
3. क्षतात्विल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रुढः रघु. २.५२
4. स जातकर्मण्यखिले तपस्विना तपवनादेत्य पुरोधसाकृते रघु. ३.१८
5. तदुपहितकुटुम्बः शान्तिमात्सुकोऽभून्न हि सति कुलधुर्ये सूर्य वंश्या गृहाय ॥ रघु. ७.७१
6. पराभिसन्धानपरं यद्यप्यस्य विचेष्टितम्
जिगीषोरश्वमेधाय धर्म्यमेव बभूव तत् ॥ रघु. १७.७६
7. पिताराधनतत्परेण पुत्रेण पुत्री स यथैव तेन।
पुत्रैस्तथैवात्मजवत्सलेन स तेन पित्रा पितृमान् बभूव ॥ रघु. १८.११
8. वने तपः क्षान्ततरचार ॥ रघु. १८.९
9. त्यागाय संभृतार्थानां रघु. १.७
10. तेषां सवभूयिष्ठास्तुङ्गा द्रविणराशयः रघु. ४.७०
11. स विश्वजितमाजहे यज्ञं सर्वस्व दक्षिणम्।
आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव रघु. ४.८६
12. ऋत्विजः स तथाऽनर्च दक्षिणाभिर्महाक्रती।
यथा सा धारणीभूतं नामास्य धनदस्य च ॥ रघु. १७.८०
13. तो प्रत्यभिव्यक्तमनोरथानां महीपतीनां प्रणयाग्रदूत्यः
प्रवालशोभा इव पादपानां शृङ्गारचेष्टा विविधा बभूवुः ॥ रघु. ६.१२
14. सा यूनि तस्मिन्नभिलाषबन्धं शशाक शालीनतया न वक्तुम्।
रोमाञ्चलक्ष्येण स गावयष्टि भित्त्वा निराक्रामदरालकेश्याः ॥ रघु. ६.८१
15. जालान्तरप्रेषितदृष्टिरूपा प्रस्थानभिन्नां न बबन्ध नीवीम्। रघ. ७.९
16. शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम् वार्द्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्तेतनुत्यजाम् ॥ रघु. १.८
17. एकान्तविध्वंसिषु मद्विधानां पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकेषु ॥ रघु. २.५७
18. रघुश्रुमुखस्य तस्य तत्कृतवानीप्सितमात्मजप्रियः
न तु सर्प इव त्वच पुनः प्रतिपेदे व्यपर्जितां श्रियम् ॥ रघु. ८.१३
19. ज्योतिर्मयं विचिन्वन्ति योगिनस्त्वां विमुक्तये ॥ - रघु.१०.२३
20. त्वय्यावेशिचित्तानां त्वत्समर्पितकर्मणाम्।
गतिस्त्वं वीतरागाणाम भूयः सन्निवृत्तये ॥ रघु. १०.. २७
21. तस्मात् सयोगादधिगम्य योगमजन्मनेऽकल्पत जन्मभीरुः रघु. १८.३३
22. अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः। कुमार. १.१
23. स मानसीं मेरुसखः पितृणां कन्यां कुलस्य स्थितये स्थितिज्ञः।
मेनां मुनीनामपि माननीयामात्मानुरुपां विधिनोपयेमे। कुमार. १
24. इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरुपतां समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः। कुमार. ५.२ २
25. कृतोऽक्षसूत्रप्रणयी तया करः ॥ कुमार. ५.११
26. नवोटजाभ्यन्तर सम्भृतानलं तपोवनं तच्च बभूव पावनम् कुमार ५.१७
27. स्वयंविशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता परा हि काष्ठ तपसस्तया पुनः।
तदप्यपाकीर्णमतः प्रियंवदां वन्दत्यपर्णेति च तां पुराविदः ॥ कुमार. ५.२८
28. अनन्य साधारणसिद्धमुच्चैस्तद्देवतं धाम निकामरम्यम्।
कस्मादस्मान्निरगाद्धवद्धयश्चिरार्जितं
पुण्यमिवापचारात् ॥ कुमार.१२.३८
29. शासनं पशुपतेः स कुमारः स्वीचकार शिरसाऽवनतेन।
सर्वथैव पितृभक्तिरतानामेष एव परमः खुल धर्मः ॥ कुमार, १२.५८
30. पादौ महर्षेः किल कश्यपस्य कुलादिवृद्धस्य सुरासुराणाम्।
प्रदक्षिणीकृत्य कृताञ्जलिः सन् षड्भिः शिरोभिः स नतैर्ववन्दे ||
स देवमातृर्जगदेकबन्धौ पादौ तथैव प्रणनाम कामम्।
मुनेः कलत्रस्य च तस्य भक्त्या प्रतीभवञ्शैलसुतातनूजाः कुमार. १३.४४-४५
31. यं सर्वशैलाः परिकल्प्यवत्सं मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे
भस्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च पृथूपदिष्टां दुदुहुर्धरित्रीम् ॥ कुमार. १.२
32. अलकामतिवाहोव वसतिं वसु सम्पदाम्
स्वर्गाभिष्यन्दवमनं कृत्वेवोपनिवेशितम् ॥ कुमार. ६.३७

33. दृष्ट्वा सहस्त्रेण दृशां महेशमभूत्कृताथोऽतितरां महेन्द्रः । सर्वाङ्गजातं तदथो विरुपमिव प्रियाकोपकरं विवेद ॥ कुमार.१२.२४
34. तदीयातोयदेष्वध पुष्करापवर्तकादिषु ।
    अभ्यस्यन्ति तटाघांत निर्जितैरावता गजाः ॥ कुमार, २.५०
35. तदिच्छामो विभो! स्त्रष्टुं सेनान्यं तस्य शान्तये । कर्मबन्धच्छिदं धर्म भवस्येव मुमुक्षवः कुमार २.५१
36. असम्मतः कस्तव मुक्तिमार्ग पुनर्भवक्लेशभयात प्रपन्नः कुमार. ३.५
37. यमामनन्त्वयात्मभुवोऽपि कारणं कथं स लक्ष्यप्रति कुमार. ५.८९